ISSN - 2231-1130
वर्ष–सप्तम् ; सितम्बर–2016

उत्तर भारत में धार्मिक परियोजन : जयगुरूदेव पंथ

आरती विश्वकर्मा*

भारत एक प्राचीन योगी, योगेश्वरों, ऋषियों, मुनियों, सन्तों, महात्माओं, धर्माचार्यों, दानवीरों, सिद्धो और त्यागियों का केन्द्र रहा है। इन अध्यात्मवादियों में भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी अपने ज्ञान का परचम फहराया है। इस दिशा में एक महत्वपूर्ण अध्ययन जी0एस0धुरिए ने किया जोकि ''भारतीय साधू'' नाम से प्रकाशित हुआ। यह अध्ययन धार्मिक परियोजन के संदर्भ में बहुप्रचलित पंथ जयगुरूदेव पंथ का विश्लेषण करता है।

परियोजन के सामान्य परिचय के रूप में कहा जा सकता है कि सामाजिक परिवर्तन अथवा किसी अन्य संख्या में जनता को सक्रिय बनाने की प्रक्रिया है। इसे अभिवृत्तियों में परिवर्तन लाने का साधन भी कहा जा सकता है। परियोजन को सामाजिक व्यवस्था के प्रकार्य के रूप में देखने का प्रयास किया गया है। (नेटल, 1967) परियोजन को प्रत्यक्ष एवं प्रत्यक्ष प्रकारों को व्यवस्थात्मक विश्लेषण द्वारा समझने का प्रयास किया गया है, 'परियोजन अनिवार्य रूप से (1) अभिवृत्तिक कार्यवाही के प्रति वचनबद्धता तथा (2) इस वचनबद्धता को कार्यवाही या प्रेक्षणमूलक व्यवहार में बदलने का साधन है।' (नेटल, 1967)

परियोजन एक प्रक्रिया है जिसमें सामूहिकता दृष्टिगत होती है, ऐसी सामूहिक क्रिया जो अपने लख्यों को प्रयासरत रहती है। यह प्रक्रिया परिवर्तन को लाने के लिये जन समूह का एकत्रीकरण है जोकि गतिशीलता को इंगित करता है। परियोजन को एक परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है परियोजन के अध्येयताओं में विभाजित किया है तथा समय तथा स्थान दोनो संदर्भें में इसका अध्ययन किया गया है। प्रमुखतः परियोजन का अध्ययन दो

* शोधा छात्रा, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

संदर्भों में हुआ है। इतिहासिक संदर्भ जो परियोजन घटित हो चूके है तथा जो वर्तमान जारी परियोजन हैं। (बरूआ, 2001)

परियोजन की अवधारणा एक विश्लेषणतात्मक प्रश्न है। तथा परियोजन की ऊर्जा के स्रोत क्या है? परियोजन से पहले वो स्थितियँ दशाएँ तथा कारण है जिनमें लोग परियोजित होते है जैसे शोषण, दमन, वंचना, सापेक्षिक वंचना तथा नागरिक समाज की स्वायत्ता का हनन ये कारण तथा दशाएँ परियोजन का आधार बनते है। सर्वप्रथम परियोजन विश्वयुद्ध के दौरान रक्षा कार्य के लिये हुआ था। परियोजन कुछ मुद्दों अथवा विषयों पर हुए हैं तथा इनके अध्ययन की पद्धति क्या है?तथा परियोजन के क्या कारण थे? समय–समय पर इसका अध्ययन हुआ। कुछ मुद्दे जैसे सामाजिक असमानता, निर्धनता, अल्पसंख्यक समूह, शोषण, नृजाति, पहचान, लौगिक असमानता, पर्यावरण जैसे कुछ प्रमुख कारण रहे हैं। पिछले पांच दशकों के दौरान समाज वैज्ञानिकों तथा समाजशस्त्रियों द्वारा इस विषय पर अनेक महत्वपूर्ण अध्ययन हुए है। परियोजन तथा आन्दोलन का उदभव क्यों और कैसे हुआ? इनके अध्ययन के लिये कैसे समाजशास्त्री दृष्टिकोण का प्रयोग किया जाए? यही सारे प्रश्न इस विषय के अध्येताओं का मार्गदर्शन करते हैं। तथा अनेक लेख सोशियोलाजिकल बुलेटिन'' में प्रकाशित हो चूके है। (साहू)

समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था की संरचना तथा इसकी संस्थाओं का अध्ययन करना और आन्तरिक कारकों तथा बाह्य कारकों के संयोगो द्वारा सामाजिक व्यवस्था की स्थायी प्रक्रिया तथा परिवर्तन का अध्ययन करना है परियोजन सामाजिक आन्दोलन के पाँच कारकों में से एक है। एक कुशल परियोजन आन्दोलन को सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अनेक समाज वैज्ञानिकों ने आन्दोलन को कई श्रेणियों में विभाजित किया है। राल्फ0एच0 टर्नर और लेविस एम0किलिअन (1957) मुख्यतः आन्दोलन को तीन भागों में विभाजित किया है–

मूल्योन्मुख, शक्तिउन्मुख, सहभागी उन्मुख

डेविड एर्बल (1966) ने रूपान्तरणात्मक, सुधारात्मक, वैकल्पिक तथा मुक्तिप्रद (विमोचक) श्रेणियों में विभाजित किया है। (साहू)

आन्दोलन की श्रेणियों के आधार पर तथा परियोजन पर हुए अध्ययनों के आधार पर परियोजन को निम्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है–

1. सामाजिक परियोजन
2. राजनीतिक परियोजन
3. धार्मिक परियोजन
4. पर्यावरणीय परियोजन
5. नृजाति परियोजन

किसी भी समाज के संगठन, उसकी उपलब्धियों और प्रगति का अंकन करते समय उसके धर्म की पृष्ठभूमि और समाज के सदस्यों को प्रभावित करने वाले धार्मिक कारकों का अध्ययन आवश्क है। धार्मिक विश्वास और श्रद्ध की समूह में सुरक्षा और सहयोग की भावना को जन्म देते है। समाज की रचनात्मक अभिव्यक्तियों, विशेषकर उसके साहित्य और कला, सामाजिक गतिविधियों और क्रिया कलाप आदि पर धार्मिक विश्वासों की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष छाप अवश्य रहती है। (एस0सी0दूबे, 1993) धार्मिक क्रियाओं के लिये दा बाते आवश्यक हैः अतीन्द्रिय और दैवी शक्ति के प्रभावों की अनुभूति और उनके प्रति विश्वास और मान्यताएँ, व्यवहारों और प्रथाओं की सृष्टि। (दूबे)

धर्म और धार्मिक क्रियाएँः– जब कभी धर्म पर विचार किया जाता है तो हम अपने स्वयं के धर्म की परिभाषा को गौण नहीं मान पाते। टायलर की संक्षिप्त परिभाषा इस सम्बोध को थोड़ा–बहुत स्पष्ट करने में सहायक होती है। वे 'आत्माओं में विश्वास' को ही धर्म मानते है। हम धर्म में तीन पक्षों का अस्तित्व पाते हैः धर्मिक विश्वास, धार्मिक भावना, धार्मिक व्यवहार।

ये तीनों पक्ष मिलकर जिस संस्कृति संकुल की सृष्टि करते है, उसे धर्म कहते है। रहस्मय और अज्ञेय को समझने के लिये भावना का आधार

लिया है तब हम धर्म के क्षेत्र में प्रवेश कर लेते है। विश्वास को बाह्य अभिव्यक्ति देने की प्रवृति प्रायः सभी सभाओं में पायी जाती है। (दूबे) धर्म का अध्ययन समाजशास्त्रीय साहित्य में अगुआ कहा जा सकता है। धर्म का समाजशास्त्र वस्तुतः आदमी की धार्मिक गतिविधियों का या अति प्राकृत शक्तियों से जुड़े हुए व्यवहारों का अध्ययन करता है। तथा ईश्वरीय शक्ति, एक ईश्वरवाद, बहुईश्वरवाद, प्रतीक, पाप और पुण्य और जादू के प्रश्नों को उठाते हैं। मार्क्सवाद धर्म को भौतिक परिपेक्ष्य में देखता है। बेबर की विशेषता यह है कि धर्म का सम्बन्ध वे पूँजीवाद के साथ जोड़ते है तथा वेबर के अनुसार हिन्दूधर्म में ऐसे आचार नहीं है जो पूँजीवाद को बढ़ावा दे। वहीं दुर्खीम के अनुसार धर्म एक ऐसी शक्ति है जिसका उद्‌गम समाज है इसके द्वारा समाज के संगठन तथा एकता को सहायता मिलती है। (दोषी, जैन, 1996)

धार्मिक परियोजन धार्मिक अस्मिता के लिये जन समुदाय का एकत्रित होना तथा जिसका कारण निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति होता है कहा जाता है कि ''जब–जब होहिं धरम की हानि तब–तब प्रभु धर मनुज शरीरा'' अर्थात जब–जब धर्म की हानि होती है तब–तब ईश्वर का मनुष्य रूप में जन्म होता है अर्थात जब कुछ सामाजिक बुराईयां समाज में व्याप्त हो जाती हैं तो धर्मगुरू तथा समाजसुधारकों तथा समाज वैज्ञानिकों द्वारा समाज का पुर्नउत्थान किया जाता है। जिससे कि समाज प्रकार्यात्मक रूप से चलता रहे दुरखाइम स्वयं भी अपने धर्म के अध्ययन में यह मानते है कि धर्म का प्रकार्य समाज में एकीकरण करना है समाज को जोड़े रखना है।

जयगुरूदेव पंथ के उदभव एवं विकास का दीर्घ इतिहास है उत्तर प्रदेश का मथुरा में इसका मुख्य आश्रम है तथा देश के अन्य भागों में फैला हुआ है इस पंथ की विचारधारा धार्मिक, अध्यात्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, विचारों का गुच्छ है। पंथ के उद्‌देश्य का केन्द्र–बिन्दु ''जनसमुदाय के हितों की रक्षा'' ''जीवों की रक्षा'' ''पारिवारिक व संसारिक सुख शक्ति'' तथा जन समुदाय की मान प्रतिष्ठा बनाये रखना है। तथा एक प्रमुख उपदेश ''शाकाहारी बनना'' शाकाहार अपनाना। तुलसीदास इस पंथ के प्रणेता थे

तथा वर्तमान में इसका संचालन पंकज जी महाराज द्वारा किया जा रहा है समय–समय पर इस पंथ के द्वारा अनेक सम्मेलनों का आयोजन किया जाता है। (पंकज, 2011)

जिसमें अधिक संख्या में जन परियोजन होता है और लोग पंथ की विचारधारा तथा उद्देश्यों का अनुशरण करते हैं। तथा विचारधारा के माध्यम से परिवर्तन की बात करते हैं।

कुछ प्रमुख उद्देश्य :–

1. धर्म की स्थापना के लिये कोई न कोई महान आत्मा का जन्म होता है।
2. बुरे कर्मों का त्याग करना।
3. आमदनी का दसवां हिस्सा दान करना।
4. हिंसा से बरक्कत चली जाती है।
5. मांस, मंदिरा का त्याग करना।
6. शाकाहार का अपनाना। (पंकज, 2014)

जयगुरूदेव पंथ की विचारधारा की समाजशास्त्रीय आधार पर तुलना की जा सकती है–

जिस प्रकार कार्ल मार्क्स सर्वहारा क्रान्ति और क्रान्ति के माध्यम से परिवर्तन तथा वर्गविहीन समाज की स्थापना की बात करते हैं। उसकी प्रकार यह पंथ वैचारिक क्रान्ति की बात करता है जो समाज को बुराईयों, अनीति, हिंसा से सदमार्ग पर ले जाये।

धर्म की स्थापना के लिये किसी महान आत्मा का जन्म होता है जैसा कि वेबर का मानना है कि जब समाज में तानाशाही का दबदबा होता है तो समाज में करिश्मा होता है जो सामान्य से भिन्न होता है।

यह पंथ पूंजीवादी का विरोध तथा अहिंसात्मक विचारों का पोषक है पूंजीवाद के द्वारा निर्धन और अधिक निर्धन तथा धनवान अधिक अधनवान बनते जा रहे है अर्थात आर्थिक असमानता बढ़ती जा रही है यहां गांधीवादी विचारों की झलक मिलती है।

श्री अरविन्द ने अपनी विचारधारा में आत्मा और भौतिक दुनियाँ के बीच अन्तर को मिटाया है इन्ही विचारों से ओत प्रोत यह पंथ है।

जन परियोजन :– इस परियोजन में लाखों लोग सम्मिलित है सभी धर्मों के लोग जो इस पंथ में सम्मिलित है वो पंथ की विचारधारा का अनुसरण करते है। शाकाहार को अपनाते है। तथा अध्ययन में यह ज्ञात होता है कि 76 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्रों से जूड़े है। 65 प्रतिशत पुरूष तथा 35 प्रतिशत महिलाएँ है। शैक्षिक स्तर पर कक्षा आठ से इण्टरमीडिएट के उत्तरदाओं की संख्या अधिक है। तथा सभी आजीवन इस पंथ से जूड़े रहना चाहते है।

शोध से प्राप्त नकारात्मक तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि यदि सम्पूर्ण जनसंख्या शाकाहारी हो जायेगी तो अनाज के उपभोग की समस्या बढ़ जायेगी।

पंथ की विचारधारा दूध को शाकाहार कहती है जबकि दूध भी पशु उत्पाद (Animal Product) है।

कल्याणकारी कार्य मात्र कुछ शहरों तक सीमित है।

प्रचार माध्यमों की कमी है।

अनन्तः यह एक कुशल धार्मिक परियोजन है। जोकि अपनी विचारधारा के कारण अन्य पंथ निरंकार, साहबबन्दगी, राधास्वामी इत्यादि से भिन्न है।

निष्कर्ष–

इस विषय पर अध्ययन की कमी ही इस विषय के अध्ययन में जय गुरूदेव पंथ का एक धार्मिक परियोजन के रूप अध्ययन किया गया है तथा यह पाया गया है कि इस पंथ में सम्मिलित होने के बाद लोग शाकाहार को अपनाते है तथा पंथ के उद्देश्यों का पालन करते है। यह अध्ययन जयगुरूदेव पंथ में जनपरियोजन का विश्लेषण करता है।

संदर्भ –

1. बरूआ, जयन्ती, सोशल मोबीलाइजेशन एण्ड मार्डन सोसाइटी, मित्तल पब्लिकेशन, 2001

2. दूबे, एस0सी0, मानव और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, 1993
3. दोषी, जैन, इमाइल दुर्खीम, राव पब्लिकेशन, जयपुर, नई दिल्ली, 1996
4. दोषी, जैन मैक्स वेबर, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, नई दिल्ली, 1996
5. नेटल, जे0पी0, पॉलिटिकल मोविलाइजेशन : ए सोशियोलाजिकल एनेलिसिस ऑफ मैथड्स एण्ड कॉन्सेप्टस, लन्दन : फेबर एण्ड लि0, 1967 पृष्ठ 32–33
6. पंकज, महराज, भविष्य की झलक अतीत के आइने से, जयगुरूदेव धर्म प्रचारक संस्था, मथुरा, 2011
7. पंकज, महराज, भारत की यह भूमि उथल पुथल करेगी, जयगुरूदेव धर्म प्रचारक संस्था, मथुरा, 2011
8. पंकज, महराज, एक नया समाज बनाना पड़ेगा, जय गुरूदेव धर्म प्रचारक संस्था, 2014
9. पंकज, महराज, धर्म अधर्म और राजनीति, जयगुरूदेव धर्म प्रचारक संस्था, 2014
10. पंकज, महराज, कलयुग माया का युग, जयगुरूदेव धर्म प्रचारक संस्था, 2015
11. साहू, डी0आर0, सोशियोलॉजी ऑफ सोशल मूवमेन्ट, स्टडीज इन इण्डियन सोशियोलॉजी, सेज पब्लिकेशन।